चूड़ाकर्म

संस्कार - विवेचन

• श्रीराम शर्मा आचार्य

चूड़ा-कर्म संस्कार विवेचन

शिर के बाल जब प्रथम बार उतारे जाते हैं, तब वह चूड़ा-कर्म या मुण्डन संस्कार कहलाता है । यह समारोह इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि मस्तिष्कीय विकास एवं सुरक्षा पर इस समय विशेष विचार किया जाता है और वह कार्यक्रम भी शिशु-पोषण में सम्मिलित किया जाता है, जिससे उसका मानसिक विकास व्यवस्थित रूप से आरम्भ हो जाय ।

मस्तिष्क बालों से ढका रहता है । बाल सर्दी-गर्मी और बाहरी उतार-चढ़ावों से शिर की रक्षा करते हैं, इसलिए प्रकृति ने शरीर के इस सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान की सुरक्षा के लिए एक स्थायी परिधान लपेट दिया है । यह प्रकृति की दी हुई चिरस्थायी टोपी है । इसलिए आमतौर से यही उचित रहता है कि शिर पर बाल रखे रहें । सफाई में अड़चन पड़ती हो तो बहुत लम्बे केश न रखकर उन्हें छोटे भी कटाया जा सकता है, जैसा कि आजकल लोग मझोले बाल रखते भी हैं । महिलाओं को अवकाश भी रहता है और वे उसे श्रृंगार, सौन्दर्य का साधन भी मानती हैं इसलिए पूरे लम्बे केश रखे रहती हैं । मस्तिष्क की सुरक्षा की दृष्टि से यह उचित भी है । प्राचीनकाल में ब्रह्मचारी और साधु महात्मा पंच-केश रखाये रहते थे ।

चूड़ा-कर्म का रहस्य-मुण्डन का एक विशेष वैज्ञानिक प्रयोजन है । अब तक चल रही विचारधारा में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करना

हो तो उसके लिए विचार संस्थान को विशेष रूप से प्रभावित करना पड़ता है । चूँकि केश मस्तिष्क पर पड़ने वाले बाह्य प्रभावों को रोकते हैं इसलिए उन्हें हटा कर यह सुविधा उत्पन्न कर ली जाती है कि शिर के रोम कूपों द्वारा कोई विशिष्ट प्रेरणा मस्तिष्क के अन्तराल विचार संस्थान तक पहुँचाई जा सके । ऐसे मुण्डन किसी विशेष अवसरों पर ही कराये जाते हैं । चूड़ा कर्म संस्कार के अवसर पर इसलिए कि अब तक चले आ रहे जन्म–जन्मान्तरों के पशु संस्कारों को संकीर्ण स्वार्थ में ग्रस्त विचारों को बदल कर मानवीय आदर्शों को अपनाने के लिए मस्तिष्क प्रशिक्षित किया जाय, यज्ञोपवीत वेदारंभ संस्कार के अवसर पर इसलिए कि जिस ज्ञान को मस्तिष्क में धारण किया जा रहा है उसका प्रयोजन एवं लक्ष्य समझ लिया जाय । मरणोत्तर संस्कार में उत्तराधिकारी तथा कुटुम्बीजन इसलिए मुण्डन कराते हैं कि प्रियजन के स्वर्गवास से जो आघात लगा है, जो शोक और मोह उत्पन्न हुआ है उसे हटाया जा सके । कुछ सम्प्रदायों के संन्यासी शिर मुड़ाते हैं ताकि जीवन क्रम में अब तक चली आ रही व्यक्तिवादी विचार धारा को बदल कर विश्वात्मा के साथ अपने तादात्म्य की नई भाव–चेतना को विकसित किया जा सके । बंगाल आदि प्रान्तों में विधवायें भी इसी प्रयोजन के लिए शिर मुंड़ाती हैं कि वे गृहस्थ निर्माण सम्बन्धी अपने सपनों को मिटाकर उसके स्थान पर आत्म निर्माण, विश्व–निर्माण के परिष्कृत दृष्टिकोण को अपना सकें ।

तात्पर्य यह है कि जीवन–क्रम के प्रचलित ढर्रे को बदल डालने का वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक माध्यम मुण्डन माना गया है । वैज्ञानिक इसलिए कि संस्कार विधान के अवसर पर होने वाले मंत्रोच्चार, यज्ञ एवं कर्मकाण्ड की अध्यात्म विद्या के आधार पर बनी हुई पद्धति का प्रयोग करके शिर संस्थान के तन्तुओं को अमुक दिशा में चलने के लिए प्रभावित किया जाता है । इस माध्यम से मस्तिष्क के गहन अन्तराल में भी हलचल मचती है और उससे अभीष्ट प्रयोजन भावनात्मक परिवर्तन सरल हो जाता है ।

मनोवैज्ञानिक इसलिए कि किसी विचार का कार्य के साथ संबंध जोड़ देने से वह अपना एक प्रभाव एवं संस्कार बनाकर चिरस्थाई हो जाता है । चोटी रखने से व्यक्ति यह विश्वास जमा लेता है कि वह हिन्दू है । मुसलमानों में सुन्नत का रिवाज इसलिए भी है कि वह सदा यह समझता रहे कि वह मुस्लिम धर्म में दीक्षित है । भावरें फिर लेने से यह मान लेता है कि विवाह हो गया । दुपट्टे में गाँठ बाँध लेने से उस बात के भूल जाने की सम्भावना नहीं रहती । गलती का प्रायश्चित करते हुए भविष्य में उसे न करने का स्मरण बनाये रखने के लिए कान पकड़ कर उठक-बैठक करने का दण्ड भी मिलता है । किसी परास्त पराजित से उसका गर्व समाप्त करने और दीनता अनुभव कराने के लिए विजेता लोग मूँछें मुड़ा देते थे । बाजी हारने का सार्वजनिक प्रदर्शन करने के लिए लोग मूँछ मुड़ाने की शर्त लगाते हैं । नाक छिदा लेने से लड़की को अपनी नारीत्व का बोध होता रहता है । अन्यथा यदि वेश-विन्यास, बोल-चाल, रीति-रिवाजों का अन्तर जहाँ न हो वहाँ रहने पर लड़का-लड़की में कोई विशेष अन्तर न रहेगा । नारी से नर में जो भिन्नता दिखाई देती है, वह उसकी संस्कृति बदल जाने के कारण ही होती है । कहने का तात्पर्य यह है कि कुछ शारीरिक क्रियाकृत्य या वेश-विन्यास में हेर-फेर के साथ-साथ भावनात्मक परिवर्तन का तारतम्य भी छिपा रहता है । मुण्डन जैसे संस्कारों का यह भी प्रयोजन है कि इस प्रदर्शन घोषणा के आधार पर व्यक्ति स्वयं वैसे ही अनुभव करें और दूसरे भी वैसा ही समझें जैसा कि उस कृत्य का मूल प्रयोजन था । मनोवैज्ञानिक दृष्टि में मुण्डन एक सार्वजनिक घोषणा प्रदर्शन है जिसका प्रयोजन अब तक चली आ रही मान्यता कार्य पद्धतियों को बदल देना है ।

अन्य योनियों के संस्कार—चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते रहने के कारण मनुष्य कितने ही ऐसे पाशविक संस्कार, विचार एवं मनोभाव अपने भीतर धारण किये रहता है, जो मानव जीवन में अनुपयुक्त एवं अवांछनीय होते हैं । इन्हें हटाने और उस स्थान पर मानवतावादी आदर्शों के प्रतिष्ठापित किये जाने का कार्य इतना महान

एवं आवश्यक है कि वह पूरा न हो सका तो यही कहना होगा कि आकृति मात्र मनुष्य की हुई–प्रवृत्ति तो पशु की ही बनी रही । ऐसे नर–पशुओं की इस संसार में कमी नहीं जो चलते–बोलते, खाते–पहनते तो मनुष्यों की तरह ही हैं, पर उनके आदर्श और मनोभाव पशुओं जैसे होते हैं । ऐसे लोग मानव–जीवन को कलंकित ही करते हैं । ईश्वर की अनुपम देन को निरर्थक गँवाने वाले इन लोगों को अभागा ही कहना पड़ता है ।

जीव साँप की योनि में रहते हुए बड़ा क्रोधी होता है, अपने बिल के आस–पास किसी को निकलते देख ले तो उस पर क्रुद्ध होकर प्राण हरण करने वाला आक्रमण करने से नहीं चूकता । कितने ही मनुष्य उन क्रूर संस्कारों को धारण किये रहते हैं और छोटा–सा कारण होने पर भी इतने क्रुद्ध कुपित होते हैं कि उस आवेश में सामने वाले का प्राण हरण कर लेना भी उनके लिए कुछ कठिन नहीं रहता । जिन जीवों को शूकर की योनि के अभ्यास बने हुए हैं, वे अभक्ष्य खाने में कोई संकोच नहीं करते । मल–मूत्र, रक्त–मांस, कुछ भी वे रुचिपूर्वक खा सकते हैं, वरन् फल–मेवा, दूध, घी जैसे सात्विक पदार्थों की उपेक्षा करते हुए वे उन अभक्ष्यों में ही अधिक रुचि एवं तृप्ति अनुभव करते हैं । कुत्ते की तरह पेट के लिए दुम हिलाने वाले, लक्कड़बग्घे की तरह निष्ठुर, लोमड़ी की तरह धूर्त, बन्दर की तरह चंचल, जोंक की तरह रक्त पिपासु, कौए की तरह चालाक, मधु–मक्खियों की तरह जमाखोर, बिच्छुओं की तरह दुष्ट, छिपकली की तरह घिनौने, कितने ही मनुष्य होते हैं । किसी का भी खेत चरने में संकोच न हो, ऐसे सांड कम नहीं, जिन्होंने कामुकता के उफान में लज्जा और मर्यादा को तिलाञ्जलि दे दी हों ऐसे श्वान प्रकृति नर–पशुओं की कमी नहीं । दूसरों के घोंसले में अपने अण्डे पालने के लिए रख जाने वाली हरामखोर कोयलें कम नहीं, जो आरामतलबी के लिए अपने शिशु–पोषण जैसे महत्वपूर्ण कर्तव्यों को भुलाये हुए दूसरों का मनोरंजन करने के लिए फूल वाली डाली पर गाती–नाचती फिरती है । ऐऐ लोभी भौंरे जो फूल के मुरझाते ही

बेवफाई के साथ मुँह मोड़ लेते हैं, मनुष्य समाज में कम नहीं हैं । शुतुरमुर्ग की तरह अदूरदर्शी, भैंसे की तरह आलसी, खटमल की तरह पर–पीडक, मकड़ी और मक्खियों की तरह निरर्थक मनुष्यों की यहाँ कुछ कमी नहीं ।

यही प्रकृति मनुष्यों में भी रहे तो उसका मनुष्य शरीर धारण करना निरर्थक ही नहीं मानवता को कलंकित करने वाला ही कहा जायगा । समझदार व्यक्तियों का सदा यह प्रयत्न रहता है कि उनके द्वारा पाली–पोसी गई सन्तान ऐसी न हो, संस्कारों की प्रतिष्ठापना प्रधानतया बालकपन में ही होती है, इसलिए हमें अपने माता–पिता की वैसी सहायता न मिलने से मानवोचित विकास करने का अवसर भले ही न मिला हो पर अपने बालकों के सम्बन्ध में तो वैसी भूल न की जाय, उन्हें तो सुसंस्कारी बनाया ही जाय । चूड़ा–कर्म मुण्डन–संस्कार के माध्यम से किसी बालक के सम्बन्ध में उसके सम्बन्धी, परिजन, शुभचिन्तक यही योजना बनावें कि उसे पाशविक संस्कारों से विमुक्त एवं मानवीय आदर्शवादिता से ओत–प्रोत किस प्रकार बनाया जाय ?

चूड़ा–कर्म आरम्भ–अन्य संस्कारों की भाँति माता–पिता बालक के साथ मण्डप में उपस्थित होते हैं । पवित्रीकरण, आचमन, शिखा बन्धन, प्राणायाम, न्यास, पृथ्वी पूजन, कलश पूजन, देव पूजन, नमस्कार, षोडशोपचार, चन्दनधारण, स्वस्तिवाचन, रक्षा विधान के उपरान्त इस संस्कार का विशेष कार्यक्रम आरम्भ हो जाता है ।

बालक के बालों को गौ के दूध, दही, घी में जल मिलाकर भिगोते हैं । भिगोते समय "ॐ सविता प्रसूता.........." मंत्र बोला जाता है । इस क्रिया को 'मस्तक लेपन' कहते हैं ।

मस्तक लेपन–गौ माता कल्याणकारक, परोपकारी, सरल, सौम्य प्रकृति की होती है । उसके शरीर से निकले हुए गोरस भी इसी प्रकृति के होते हैं । इन पदार्थों में वे सब गुण रहते हैं, जो गो–माता में विद्यमान हैं । इनसे मस्तक का लेपन, बालों का भिगोना, इस बात

का प्रतीक है कि हमारी विचारणा, मानसिक प्रवृत्ति गौ–माता जैसी–गोरस जैसी स्निग्ध सौम्य होनी चाहिए । घृत को स्नेह कहते हैं । स्नेह का दूसरा नाम प्रेम भी है । दूध, दही, घी तीनों ही स्नेह सिक्त हैं । इनसे शिरस्थ रोम कूपों का भिगोया जाना, इस बात का निर्देश करता है कि हम जो कुछ सोचें–विचारें उसके पीछे प्रेम भावना का समुचित पुट होना चाहिए ।

कितने ही व्यक्तियों की बौद्धिक प्रतिभा बड़ी विलक्षण होती है, परीक्षा में वे अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण होते हैं, चेहरा–मोहरा रौबीला होता है, बातून पूरे होते हैं, चतुरता की कमी नहीं होती, सब कुछ ठीक रहने पर भी एक ही कमी रह जाती है कि भावना की दृष्टि से बड़े स्वार्थी और संकीर्ण होते हैं । अपना मतलब गाँठने के लिए किसी से भी किसी भी प्रकार का व्यवहार कर सकते हैं । ऐसे लोगों की मानसिक शक्ति उनके निज के लिए कोई तात्कालिक लाभ भले ही उपस्थित कर दे, पर अन्ततः तो उन्हें भी पतित, घृणित संकटग्रस्त एवं दुःखी बनाती है । दूसरों के लिए तो वे विपत्ति के कारण बनते ही हैं । ऐसे लोगों का चतुर और तेज दिमाग होना एक प्रकार से अनिष्टकर ही सिद्ध हुआ । इससे तो वे मूर्ख होते तो अच्छे रहते । जेलखाने में बन्द और बाहर जितने भी अपराधी और दुष्ट–दुरात्मा हैं, वे सभी मस्तिष्क की दृष्टि से काफी चतुर होते हैं । यदि ऐसा न होता तो चोरी, ठगी, जालसाजी, उठाईगीरी, जेबकटी आदि कर सकना उनके लिए सम्भव ही न होता । कोई साधारण बुद्धि का व्यक्ति ऐसा दुस्साहस कर ही नहीं सकता । कोई कर भी बैठे तो सहज ही पकड़ा जाता है । धूर्त लोग कुकर्म भी करते–रहते हैं और महात्मा भी बने रहते हैं, यह बुद्धि कौशल का चमत्कार ही तो है ।

ऐसा बुद्धि चमत्कार निरर्थक है । उससे लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है । इसकी अपेक्षा वह मंदबुद्धि अच्छा जो सरल सौम्य और सीधे मार्ग पर चलता हुआ, किसी प्रकार अपना सादा जीवन व्यतीत कर लेता है । बालक को बुद्धिमान, क्रिया–कुशल,

चतुर, प्रतिभावान बनाया जाता है, उसके मानसिक विकास पर समुचित ध्यान दिया जाता है । इसके लिए प्रत्येक अभिभावक को आवश्यक ध्यान रखना और आवश्यक प्रयत्न करना पड़ता है । किया भी जाना चाहिए, किन्तु उससे भी अधिक आवश्यक यह है कि उस मानसिक विकास को स्नेह, सद्भाव के खूँटे से मजबूत बाँध दिया जाय । वह इस मर्यादा को भंग न करने पावे । बुद्धिमत्ता का उपयोग इस प्रकार किया जाय कि उससे दूसरों का हित होता हो, उनकी प्रगति होती हो, प्रसन्नता बढ़ती हो तथा शान्ति मिलती हो । जो कुछ कहा जाय, मधुर हो, प्रेम शुभकामना और सद्भावना से ओत-प्रोत हो । जिससे प्रेरणा एवं उल्लास मिलता हो । दिशा पतन से बदलकर उत्थान की ओर मुड़ती हो । अपना भी चित्त प्रसन्न हो और दूसरों को भी प्रकाश मिले, ऐसा ही भाषण सराहनीय एवं सार्थक है । ऐसा भाषण केवल जिह्वा नहीं कर सकती, इसके मूल में सबके प्रति स्नेह सिक्त सद्भावना का पुट रहना चाहिए । मानसिक स्तर भावनापूर्ण होगा, तो कथन का स्वरूप भी उसी प्रकार का बनेगा । ऐसी वाणी अपना भी कल्याण करती है तथा औरों का भी ।

अच्छी कृतियाँ भी मानसिक उत्कृष्टता के 'ऊपर, भावनात्मक श्रेष्ठता के ऊपर निर्भर हैं । मन में उच्च आदर्शों के प्रति निष्ठा होगी, मानवता को गौरवान्वित करने की आकांक्षा उठती रहेगी तो कार्यशैली भी ऐसी बनेगी जिसे सर्वत्र सराहा जाय और अपनी अन्तरात्मा को सन्तोष मिले । कर्म से ही मनुष्य ऊँचा उठता और नीचे गिरता है । क्या भौतिक और क्या आत्मिक दोनों ही प्रकार की प्रगति हमारे सत्कर्मों पर सुव्यवस्थित रीति-नीति अपनाने पर निर्भर रहती है । यदि उसमें चूक होती रहे तो अस्त-व्यस्त, दीन-दरिद्र, असफल एवं तिरस्कृत जीवन-व्यतीत करना पड़ेगा । दिशा चाहे कोई भी क्यों न हो सफलता उन्हें मिलती है जो पराक्रमी, पुरुषार्थी, परिश्रमी, मनस्वी एवं निष्ठावान होते हैं । इस प्रकार का स्वभाव अनायास ही नहीं बन जाता, उसके लिए मानसिक

सत् चिन्तन एवं सच्चा मनन आवश्यक है । मस्तिष्क की प्रवृत्ति एवं प्रगति प्रेम सम्पुटित हो तो समझना चाहिए कि भविष्य सब प्रकार शुभ है, पर यदि उसमें दुष्टता, असुरता भर गई है तो भविष्य अन्धकारमय बनने में कोई सन्देह ही नहीं रहता ।

मस्तक लेपन की क्रिया चूड़ाकर्म में इसलिए कराई जाती है कि इस आधार पर यह स्मरण रखा जा सके कि इस बालक का मानसिक विकास रूखा, संकीर्ण तथा अनैतिक अवांछनीय दिशा में न होने पावे । उसकी रुझान गौ जैसी—गोरस जैसी रहे । गौ अपने बछड़े को जैसे प्यार करती है वैसे ही हम समस्त परिवार और समाज को किया करें । अपने लिए मरते—पचते न रहें, वरन् जैसे गौ अपना रस, चर्म, अस्थि, मांस, गोबर तथा सन्तान को दूसरे के लिए उत्सर्ग करती रहती है वैसी ही रीति—नीति हमारी भी हो । रूखे—सूखे सिर को इस गोरस से आर्द्र इसलिए बनाया जाता है कि उसमें सहृदयता—भावुकता, करुणा—मैत्री, प्रेम—उदारता की आर्द्रता आजीवन बनी रहे । बालक की ऐसी प्रकृति बनाने के लिए अभिभावकों को ऐसा ही वातावरण घर में बनाना पड़ता है । बालक निर्देशों या भाषणों द्वारा समझाये सुधारे नहीं जा सकते । वे अनुकरण प्रिय होते हैं । जैसा देखते हैं वैसा करने लगते हैं, इसलिए घर में प्रेम और सद्भावना का वातावरण बनाया जाना चाहिए, ताकि बालक भी वैसी ही सौम्यता, सहृदयता को अपनाने के लिए अभ्यस्त होते रहें । गोरस से मस्तिष्क को आर्द्र बनाने का प्रयोजन इसी तरह पूरा हो सकता है ।

तीन शिखायें—बालों के गीले हो जाने पर सम्पूर्ण बालों को दाँये—बाँये तथा बीच में तीन भागों में विभक्त करते हैं । उन्हें कुशाओं तथा कलावे से जूड़े की तरह बाँध देते हैं । इस प्रकार शिर पर तीन शिखायें बनी हुई दृष्टिगोचर होती हैं । कुशाओं से शिखा बाँधते समय तीन मंत्र बोले जाते हैं । प्रथम दाहिनी ओर का जूड़ा बाँधते समय "ॐ ब्रह्म जज्ञानं............" बीच में जूड़ा बाँधते समय "ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे............" मंत्र तथा बायाँ जूड़ा बाँधते समय "ॐ

नमस्ते रुद्र मन्यव.........'' मंत्र उच्चारण किया जाता है ।

यह तीनों मंत्र क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र के हैं । तीनों देवताओं का मस्तिष्क में आह्वान-स्थापन करने का प्रयोजन यह है कि मस्तिष्क में देवत्व के भाव भरे रहें, असुरता के लिए उसके किसी कोने में गुंजायश न रहे । ब्रह्मा उत्पादन के, विष्णु पोषण के और रुद्र संहार के देवता हैं । हमें निर्माणात्मक, रचनात्मक कार्यों में लगना चाहिए । जो बनाया जा चुका है उसे बढ़ाया जाना चाहिए । जो अनुपयुक्त हो गया हो उसे हटा-मिटा देना चाहिए । यह तीनों ही बातें हमारे स्वभाव की अंग बनें तो समझना चाहिए कि उपरोक्त तीनों देवताओं का निवास मनोभूमि में रहने लगा । सत्, रज, तम यह तीन गुण भी क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश के प्रतीक हैं । हमारा जीवन इस प्रकार विकसित होना चाहिए कि इन तीनों तत्वों के समुचित सदुपयोग की उचित सम्भावना बढ़ती रहे । हम अन्तःकरण से सतगुणी बनें, अपनी भावना, आकांक्षा तथा प्रकृति सौम्य-सात्विक रखें । सन्तों जैसी पवित्र, कोमल और उदार मनोवृत्ति का परिचय देते रहें । भौतिक जीवन में समृद्ध, सम्पन्न एवं सुविकसित बनें । रजोगुण का अर्थ समृद्धि है । दीन-दरिद्र व्यक्ति आत्मिक दृष्टि से भी गये-गुजरे रहते हैं । कहते हैं कि "खाली बोरा सीधा खड़ा नहीं रह सकता" अर्थात् अभावग्रस्त मनुष्य देर तक ईमानदारी पर कायम नहीं रह सकता । सुस्थिर जीवन एवं स्वस्थ विकास के लिए मनुष्य की आमदनी इतनी होनी ही चाहिए जिससे कोई आवश्यक काम रुका न रहे । तमोगुण का अर्थ है-तेजस्विता, संघर्ष, शक्ति एवं अनुपयुक्त तथ्यों को परास्त कर सकने की क्षमता । इस क्षमता को उत्पन्न करने के लिए शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आर्थिक एवं संगठनात्मक बलों की आवश्यकता पड़ती है । इसी से शिव की पत्नी शक्ति कहलाती है । संघर्ष भयानक होता है इसलिए शिव को रुद्र-रौद्र रूपधारी-भयानक भी कहते हैं । विष्णु की पत्नी-लक्ष्मी है । लक्ष्मीपति विष्णु रजोगुण के प्रतीक हैं । रजोगुणी-अर्थात् लक्ष्मीवान । ब्रह्मा वेद के ज्ञान के सृष्टा माने जाते हैं । उनकी पत्नी गायत्री अर्थात् सद्बुद्धि-सद्भावना

ऋतम्भरा प्रज्ञा है । मस्तिष्क में तीनों देवताओं की स्थापना का अर्थ जीवन-विकास की तीनों आवश्यकताओं-सद्भावना, समृद्धि और शक्ति को प्रचुर मात्रा में निरन्तर बढ़ाते रहना ही है । बालक जब बड़ा हो जाय तो उसे इन महती आवश्कयताओं की पूर्ति में लगाना चाहिए । वह इस योग्य बन सके इसके लिए अभिभावकों को आवश्यक साधन सुविधा जुटानी चाहिए । जो लोग बालकपन छोड़कर बड़े हो चुके हैं, पर इन अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अभी समुचित ध्यान नहीं दिया है । उन्हें इसके लिए अब प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिए । चूड़ा-कर्म के उद्देश्यों को सभी उपस्थित व्यक्ति हृदयंगम करें, 'यही उचित है ।

बड़े होने पर जिस तरह तीन धागे वाला यज्ञोपवीत पहनाते हैं और तीन लड़ों के माध्यंम से महत्वपूर्ण शिक्षायें बटुक को देते हैं, उसी प्रकार इन तीन शिखाओं में भी तीन शिक्षाओं का समावेश है । माता-पिता-गुरु इन तीनों के अनुशासन में रहना, तीनों के प्रति कृतज्ञता एवं श्रद्धा की भावनायें रखना, उन्हें प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखना तीन शिखाओं का संदेश है ।

दुखों के तीन कारण हैं, अज्ञान, अशक्ति और अभाव । इन तीनों को अपने जीवन में से तथा समाज में से हटाने के लिए प्रयत्न करते रहने का व्रत लेना, इन तीन शिखाओं का संदेश है । विद्या, समृद्धि और शक्ति इन तीनों को निरन्तर बढ़ाते रहने से ही उपरोक्त तीन कष्टों की निवृत्ति होती है । इन तीन महाशक्तियों को सरस्वती, लक्ष्मी और दुर्गा के रूप में पूजा जाता है । पूजा का अर्थ है-उन्हें प्राप्त करना ।

शैशव, यौवन और वृद्धावस्था इन तीन अवस्थाओं का समुचित सदुपयोग करना तीन शिक्षायें बताती हैं । बालकपन में शारीरिक एवं मानसिक बल संग्रह करना, यौवन में समृद्धि बढ़ाना तथा वृद्धावस्था सद्ज्ञान साधना के लिए समर्पित करना तीन अवस्थाओं का सदुपयोग है ।

भूत, भविष्य, वर्तमान तीन कालों के सम्बन्ध में समुचित सतर्कता रखना तीन शिखाओं का सन्देश है। जो कुछ हुआ है, हो रहा है तथा होने वाला है, उन पर समान रूप से ध्यान रखा जाय। अतीत के इतिहास से शिक्षा ग्रहण करें। वर्तमान में कठोर कर्तव्यों का पालन करें, अपनी समस्त शक्तियों को सदुपयोग के लिए नियोजित रखें। भविष्य को उज्ज्वल बनाने की चेष्टा करें और आशा रखें। त्रिकालदर्शी, दूरदर्शी, विवेकशील होना ही सच्ची बुद्धिमत्ता है।

मस्तिष्क के विकास के लिए विद्याध्ययन में अभिरुचि बढ़ाना, स्वाध्यायशील होना, चिन्तन और मनन की आदत डालना, आवश्यक है। जिज्ञासा जागृत की जाय, प्रश्न पूछने के लिए बालक को प्रोत्साहित किया जाय और पूछे हुए प्रश्नों के समुचित उत्तर देने के लिए अपनी तैयारी रखी जाय। छोटे बालकों की ज्ञानवृद्धि का सबसे श्रेष्ठ उपाय उन्हें कथा–कहानियों द्वारा उपयोगी विषयों का ज्ञान एवं समय–समय पर सामने प्रस्तुत होने वाली समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना ही है। इसके लिए अपने को कथा–कहानियाँ सीख लेनी चाहिए, जो बच्चों को सुनाकर उनकी विचारशीलता बढ़ाने में सहायक हो सकें। पाठशाला जाने योग्य हो जाने पर तो उसे पढ़ने भेजना ही चाहिए, पर जब तक उस योग्य नहीं हो जाता, तब तक भी उसे बहुत कुछ सिखा देना चाहिए। मुण्डन संस्कार इसी आवश्यकता का प्रतिपादन करता है कि बालकों के मानसिक विकास का हर सम्भव उपाय किया जाय। तीन शिखायें–भौतिक, व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक तीनों ही ज्ञानों को अधिकाधिक मात्रा में बालक को उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी अभिभावकों पर सौंपती हैं। जिन्होंने शिखायें रखाने में योगदान दिया है उनका कर्तव्य है कि इसके लिए सदा शक्ति भर प्रयास करते रहें।

छुरा पूजन–जिस छुरे से नाई शिर मुण्डन करेगा, वह इन्हीं प्रयोजनों में काम आने वाला होना चाहिए। सब के बाल जिससे बनते रहते हैं उस पर सब के संस्कार होते हैं। इसलिए देव–कार्य में उसका उपयोग ठीक नहीं माना जाता। अच्छा हो एक बढ़िया उस्तरा

तेज धार किया हुआ, शाखा या पुरोहित अपने पास तैयार रखें और उसे ही मुण्डन संस्कारों के काम लाया करें । प्राचीनकाल में प्रथम केश उतारने का कार्य पुरोहित ही करते थे । अब उन्हें यह कला नहीं आती तो क्षौर कर्म नाई से करा सकते हैं, पर छुरा ऐसा ही लिया जाय जो सर्वसाधारण के उपयोग में न आता हो । लोहा विद्युत शक्ति को अधिक ग्रहण करता है, अस्वस्थ शरीर और मन वालों के शिर पर प्रयोग होते रहने से छुरा भी उस प्रकृति का बन जाता है और फिर उसका प्रभाव बालक पर भी अनुपयुक्त ही पड़ता है । हर बालक के लिए. नया छुरा खरीदना सम्भव न हो तो कम से कम ऐसा प्रबन्ध तो करना ही चाहिए कि छुरा केवल इसी काम के लिए नियत रहे ।

उपयोग सें पूर्व छुरा गरम पानी से तथा मिट्टी से अच्छी तरह धो-माँज लेना चाहिए तथा सिल्ली पर घिस लेना चाहिए ताकि उसमें जो पूर्व संस्कार हों वे हट जायें । इसके बाद उसे किसी बड़े पत्ते या तश्तरी में रखकर पूजन के लिए माता-पिता के सामने रखा जाय । दोनों रोली, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप से पूजन करें और उसके मूल में कलावा बाँध दें । इस पूजन के समय "ॐ शिवो नामासिः........." मंत्र बोला जाता है । इस पूजन का उद्देश्य यह है कि यह छुरा साधारण लौह उपकरण न रहकर अभिमंत्रित शक्ति संपन्न होकर बालक के मस्तिष्क में सुसंस्कारों का प्रवेश कर सके ।

गर्भ से आने वाले बाल सामान्य संस्कारों वाले होते हैं । इस आच्छादन को उतारकर उसके स्थान पर ऐसे बाल उगने चाहिए जो उत्कृष्ट भावनायें साथ लेकर 'ऊपर आवें । पुराने बालों को पिछले जीवन में जमे हुए अनुपयुक्त संस्कारों का प्रतीक माना गया है । इन बालों को काटने का प्रयोजन पाशविक विचारणाओं एवं आकांक्षाओं को हटाने-मिटाने का प्रयत्न करना है । इस उद्देश्य के लिए जिस छुरे का प्रयोग किया जा रहा है वही पर्याप्त नहीं, क्योंकि लोह उपकरणों से कुसंस्कारों को हटाया-मिटाया जाना सम्भव नहीं । विचार तो विचारों से कटते हैं । लोहे को लोहा काटता है । काँटे से

काँटा निकलता है । विष से विष का शमन होता है, लाठी का जबाव लाठी से दिया जाता है, इसी प्रकार कुविचारों का शमन उसके विरोधी तीव्र विचारों से ही सम्भव होता है । यह छुरा ऐसे प्रखर विचारों का प्रतीक–प्रतिनिधि है जो पाशविक विचारधारा को परास्त करके अपनी गहरी छाप छोड़ सके । छुरे का पूजन करने का अर्थ है ऐसे उत्कृष्ट विचारों का श्रद्धापूर्वक आह्वान अभिनन्दन, जो मनोभूमि में जमे हुए असुर संस्कारों को निरर्थक झाड़–झंखाड़ों की तरह उखाड़ फेंकने मे सफल, समर्थ हो सकें । कटीली झाड़ियाँ कुदाल, फावड़े से ही खोदी–काटी जाती हैं, उसी प्रकार अवांछनीय विचारों तथा आदतों को उखाड़ने के लिए जीवन–निर्माण की आध्यात्मिक विचारधारा को उग्र स्तर पर विकसित करना पड़ता है । सेना का मुकाबला सेना करती है, तोपों की लड़ाई में तोप, टैंकों की लड़ाई में टैंक और हमलावर जहाजों को रोकने के लिए वैसे ही मजबूत जहाज सामने अड़ाने पड़ते हैं । कुविचारों और कुसंस्कारों को उखाड़ फेंकने के लिए प्रखर एवं उग्र आध्यात्मिक मान्यताओं की आवश्यकता पड़ती है । इन्हे ही छुरा कहना चाहिए । छुरे से बाल बनाने का अलंकारिक कर्मकाण्ड वस्तुतः यही तथ्य प्रस्तुत करता है कि हमें पाशविक–भोगवादी, स्वार्थपूर्ण आसुरी मनोवृत्तियों से छुटकारा पाना ही होगा और उसके लिए अपने विचार क्षेत्र में ऐसी प्रतिपक्षी–सतोगुणी–आदर्शवादी भावनायें जमानी होंगी, जो हमें पतन की स्थिति से ऊपर उठाकर उत्थान के आसन पर प्रतिष्ठित कर सकें ।

आलस्य, प्रमाद, चटोरपन, कामुकता, फिजूलखर्ची, कटुभाषण, अशिष्टता, आवेश, मलीनता, नशेबाजी, ऐय्याशी, निराशा, चिन्ता, आत्महीनता, कायरता, कृतघ्नता, छिद्रान्वेषण, असहिष्णुता, बेईमानी, छल, लालच, निष्ठुरता आदि कितने ही दोष–दुर्गुण मनुष्य में हो सकते हैं । वे देर तक अभ्यास में आते रहने पर स्वभाव का एक अंग बन जाते हैं । इन्हें हटाने–मिटाने के लिए यह आवश्यक है कि अपने में जो दोष–दुर्गुण हों उनसे होने वाली हानियों को एक ब्योरेवार सूची बनाई जाय । ऐसे उदाहरण प्रमाण तथा तथ्य एकत्रित

किये जायें जिनमें इन बुराइयों के द्वारा जिनने जो हानियाँ उठाई हों उनकी जानकारी मिले । इसी प्रकार यह भी व्यौरा तैयार करना चाहिए कि यदि अपने दोषों को छोड़ दिया जाय तो उनमें नष्ट होने वाली शक्ति की कितनी बचत हो सकती है और उस बचत का उपयुक्त दिशा में प्रयोग करने पर कितना लाभ हो सकता है ।

उदाहरण के लिए एक तम्बाकू पीने वाला व्यक्ति जितना पैसा, जितना समय, जितना स्वास्थ्य नित्य नष्ट करता है, उसका लेखा-जोखा तैयार किया जाय और फिर यह देखा जाय कि यदि इस कुटेव को छोड़ दिया जाय और यह धन समय और स्वास्थ्य की बचत जीवन निर्माण के कार्य में लगाई जाय तो उससे प्रगति का पथ कितना अधिक प्रशस्त हो सकता है । इसका विस्तृत विवरण तैयार कर लिया जाय और बार-बार उसे पढ़ा और विचारा जाय तो कुछ समय में तम्बाकू पीने की निरर्थकता एवं हानि समझ में आ जाएगी और उसे छोड़ने की इच्छा उठने लगेगी । तीव्र इच्छा उठी नहीं कि कठिन से कठिन कार्य सरल हुआ नहीं । अपने में जो भी दोष-दुर्गुण हों उनकी हानियों और उन्हें छोड़ देने पर मिल सकने वाले लाभों का यदि विवरण तैयार करने और उस पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन-मनन करने का क्रम चलने लगे तो समझना चाहिए के मुण्डन संस्कार में पूजन किए गए छुरे की तरह विचार परिष्कार का माध्यम उपकरण बनकर तैयार हो गया ।

हर अच्छी बुरी बात के पक्ष-विपक्ष में कुछ दलीलें दी जाती हैं । जब तक हमारा मन दोषों की उपयुक्तता के सम्बन्ध में दलीलें प्रस्तुत करता रहता है तब तक उन्हें अपनाये रहने की इच्छा रहती है, पर जब मन ईमानदार वकील की तरह उन दुर्गुणों के प्रतिपक्षी सद्गुणों के लाभों पर पूरा जोर देने लगे तो सहज ही वह छटपटाहट पैदा हो जायगी जो उस दोष को छोड़ने के लिए विवश कर सके । आलसी जब तक इस दुष्प्रवृत्ति के कारण हो रहे विनाश और परिश्रम एवं उत्साह के सहारे हो सकने वाले विकास का पूरा चिन्तन न करेगा, तब तक यह दोष स्वभाव का अंग ही बना बैठा रहेगा ।

छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति हर आदमी को दोषी ठहराती है, पर जब गुण ग्राहक दृष्टिकोण विकसित कर लिया जाय तो हर व्यक्ति में बहुत कुछ अच्छाई नजर आने लगती है । द्वेष, बुद्धि से देखने पर हर कोई अपना शत्रु तथा हानि पहुँचाने वाला सूझ पड़ता है, पर जब प्रेम और आत्मीयता की दृष्टि से देखते हैं तो वह सहयोगी, सहायक एवं उपयोगी दीख पड़ने लगता है । संसार का रंग-रूप हम अपनी आँख पर चढ़े हुए रंगीन शीशोंके अनुरूप देखते हैं । यह चश्मा बदल दिया जाय तो सब कुछ बदला हुआ मालूम पड़ेगा । क्षोभ और असंतोष उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों में भी चित्त का समाधान कर सकने वाले बहुत कुछ तथ्य उपलब्ध हो जायेंगे । अनुपयुक्त विचारों से मोर्चा लेकर उन्हें परास्त कर सकने वाले रचनात्मक प्रौढ़ विचारों की सेना अपने पास संग्रह हो जाय तो समझना चाहिए कि जीवन संग्राम में विजय प्राप्त करने का ब्रह्मास्त्र मिल गया । इसे ही मुंडन का छुरा भी प्रकारान्तर से कहा जा सकता है । इसका पूजन वन्दन किया ही जाना चाहिए ।

मुण्डन कृत्य–छुरा पूजन के बाद बालक और माता को यज्ञशाला से बाहर भेज देते हैं । यज्ञ मण्डप में क्षौर कर्म नहीं होता इसलिए उसे बाहर भेजना आवश्यक होता है । समीप ही किसी स्थान पर बैठकर मुण्डन कराया जाय । मुण्डन करते समय अभिभावक तथा अन्य उपस्थित व्यक्ति मन ही मन गायत्री मंत्र का जप करते रहें और भावना करें कि उनके द्वारा किया गया यह जप बालक के मस्तिष्क में सद्‌बुद्धि का प्रकाश बनकर प्रवेश कर रहा है । बालों को आटे या गोबर के गोले में बन्द करके जमीन में गाढ़ देते हैं । अन्न के इस दुष्काल में आटे में बाल रखने की प्रथा बन्द कर देनी चाहिए और गोबर में ही उन्हें रख किसी खेत में गाढ़ना चाहिए । मुण्डन होने के बाद बच्चे को स्नान कराया जाय और नवीन वस्त्रों का पूजन कराके उन्हें पहनाया जाय तथा घुटे हुए शिर पर स्वास्तिक '卐' अथवा 'ॐ' चन्दन या रोली से लिख दिया जाना चाहिए ।

बालों का खाद–बालों को गोबर में रखकर जमीन में इसलिए

गाढ़ा जाता है कि उनकी भी गोबर की तरह खाद बन जाय । पशुओं के शरीर का हर अवयव मल-मूत्र-दूध आदि दूसरों के काम आते हैं । वृक्ष वनस्पतियाँ भी अपने पत्र, पुष्प, फल एवं लकड़ी सब कुछ परमार्थ के लिए समर्पित करते हैं । मनुष्य के लिए भी यह उचित है कि अपनी उपलब्धियों का अधिकाधिक उपयोग परमार्थ के लिए करे । बाल भी जहाँ-तहाँ बिखरकर गन्दगी न बढ़ावें वरन् वे गोबर के साथ मिलकर किसी खेत की खाद बनें और धरती की उर्वरा शक्ति बढ़ायें यही उनकी सार्थकता है ।

कितने ही व्यक्ति घायलों के लिए अपना रक्तदान करते हैं । जीवित या मृत अवस्था में अपने नेत्र अथवा दूसरे अंग दान कर देते हैं । विवेकशील लोग देहातों में टट्टी जाते हुए खुरपी लेकर जाते हैं । खेत में गड्ढा खोदकर मल त्यागते हैं और फिर मिट्टी से उसे ढक देते हैं ताकि वह मल गन्दगी न फैलाकर जल्दी ही खाद बन जाय । कई व्यक्ति मरने के बाद अपना शरीर जलाने, गाढ़ने की अपेक्षा कुत्ते, कौओं के लिए सियार, गिद्धों के लिए आहार के रूप में खुला छोड़ देने की वसीयत करते हैं । इस प्रकार के कार्य उन व्यक्तियों की इस महान भावना के सूचक हैं कि उनके शरीर का कोई भाग निरर्थक न जाय, उससे दूसरे लोग लाभ उठायें । यही मानवोचित भावना है । बालों को खाद बनाने के लिए देते हुए बालक को यही पाठ पढ़ाया जाता है तथा उपस्थित लोगों को यही अनुभव कराया जाता है कि उनके शरीर मन और साधनों का सच्चा उपयोग परमार्थ प्रयोजनों में लगाने का ही है । जिस प्रकार आज बालों को खाद बनाने के लिए लोकहित में समर्पित किया जा रहा है, उसी प्रकार हर अवयव, हर विचार, हर साधन लोक मंगल के लिए जितना अधिक लग सके उतना ही उसको सार्थक हुआ माना जाय ।

गोबर की सार्थकता, खाद के लिए जमीन में गाड़ने, डालने से ही सम्भव है । उसे उपले बनकार जलाया न जाय । जो गोबर उपले आदि बनकर दस-पाँच रुपये का लाभ देता है, वही यदि जमीन में गाढ़ा-डाला जाय तो सैकड़ों रुपये की उपज बढ़ा सकता है । गोबर

को जलाने में नष्ट करना बहुमूल्य सम्पत्ति में आग लगाने के बराबर है । इस तथ्य को सब लोग समझें और गोबर को जमीन में ही गाढ़ने का ध्यान रखें, बालों के साथ गोबर इस दृष्टि से भी जमीन में गाढ़ा जाता है ।

वस्त्र धारण—मुण्डन होने के बाद बालक को स्नान कराया जाता है । उसे नये वस्त्र पहनाये जाते हैं । इन वस्त्रों को अभिमंत्रित किया जाता है । पहनाते समय 'ॐ तस्माद् यज्ञात्' मन्त्र को बोलते हैं ।

नवीन वस्त्र धारण करने का तात्पर्य है—नवीन कलेवर धारण करना । पुराना चोला उतारकर नया चोला धारण करना । जिस प्रकार सर्प पुरानी केंचुली त्याग कर नई धारण करता है, उसी प्रकार मुण्डन के अवसर पर शिर के बाल ही नहीं मुंड़ाते वरन् पुरानी केंचुली भी बदलते हैं, पुराने कपड़ों को उतारकर नये पहनते हैं । इन वस्त्रों में एक वस्त्र पीला भी होना चाहिए ।

नवीन कलेवर इस बात का प्रतीक है कि शिर के बाल उतारकर केवल पाशविक विचारों को ही नहीं हटाया गया है वरन् शरीर पर लिपटे हुए पुराने सड़े—गले जीर्ण—शीर्ण स्वभाव एवं क्रम प्रवाह को भी बदल दिया गया है । मस्तिष्क में अवस्थित विचार तो बदल जायें पर शरीर उसी अवांछनीय ढर्रे पर लुढ़कता रहे, काम वैसे ही होते रहें, तो विचार परिवर्तन का क्या मूल्य रहा ? विचार परिवर्तन की सार्थकता तभी है जब साथ ही कार्य पद्धति भी बदल जाय । जो विचार व्यावहारिक जीवन में उतरते हैं, कार्य रूप में परिणत होते हैं, उन्हीं की सराहना हो सकती है अन्यथा दिमाग में तो बड़े—बड़े उछाल—उफान आते रहते हैं, पानी के बबूले की तरह ऐसे ही ठण्डे पड़ जायें तो इसे एक निरर्थक कल्पना—जल्पना मात्र समझा जायगा । मुण्डन के समय बालक के विचार परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की गई थी और अभिभावकों ने उसके लिए आवश्यक वातावरण बनाने एवं साधन उत्पन्न करने का निश्चय किया था । अब नवीन वस्त्र धारण कराते समय यह निश्चय भी कराना है कि शरीर का आवरण

भी इसी से ताल-मेल बिठाकर चले । जो सोचा जाय वह किया भी जाय । मानवता को सार्थक करने वाले उत्कृष्ट आदर्शवादी विचार मस्तिष्क में घूमें और साथ ही शरीर भी उसी धुरी पर अपने कार्यक्रमों का निर्धारण करे, जो भी काम शरीर से बन पड़े वह ऐसा हो जिससे अपनी अन्तरात्मा सन्तुष्ट हो, दूसरे अनुकरण की प्रेरणा प्राप्त करके अपने को धन्य हुआ अनुभव करें ।

पीला रंग, त्याग, शौर्य साहस और गतिशीलता का सूचक है । सूर्य प्रातःकाल पीत वर्ण का निकलता है-उससे पूर्व आने वाली ऊषा भी पीत होती है । रात्रि में उदय होने वाला शान्ति और प्रफुल्लता का देवदूत चन्द्रमा भी पीत वर्ण का होता है । सूर्य चन्द्र, अग्नि, ऊषा में जो गुण हैं उन्हें प्रतीक रूप से अपने जीवन में धारण करने की अभिरुचि प्रदर्शित करना पीत रंग वस्त्र धारण करने का उद्देश्य है । सूर्य की तरह तेजस्वी, गतिशील, चन्द्रमा की तरह शान्त, शीतल, अग्नि की तरह प्रखर, ऊषा की तरह स्फूर्तिवान बनने की शिक्षा पीत रंग देता है । इसलिए सम्भव हो तो सभी वस्त्र अन्यथा कम से कम एक वस्त्र मुण्डन के बाद बालक को पीत रंग का पहनाते हैं ।

स्वस्तिक लिखना-मुण्डन किये हुए मस्तक पर स्वस्तिक (卐) या "ॐ" शब्द चन्दन या रोली से लिखते हैं । यों यह लेखन कार्य करने वाले आचार्य करा सकते हैं पर अच्छा हो ऐसे कार्य किन्हीं अन्य सम्भ्रान्त सज्जन से कराये जायें । उससे उन्हें सम्मान मिलता है, उनकी रुचि और सद्भावना उस कार्य में बढ़ती है । अतएव ऐसे छुटपुट कार्य सदा उपस्थित लोगों में से किसी गणमान्य व्यक्ति से कराने चाहिए । हर संस्कार में कई-कई ऐसे कार्यक्रम होते हैं, अच्छा हो उनमें से प्रत्येक के लिए अलग-अलग सम्भ्रान्त व्यक्तियों को श्रेय दिया जाय, उनके हाथों वे कार्य कराये जायें । मुण्डन-संस्कार में वस्त्र धारण, स्वस्तिक लेखन, मस्तक लेपन, तीन शिक्षा बन्धन आदि प्रयोजनों के लिए अलग-अलग व्यक्ति रखे जायें तो हर्ज नहीं-वैसे इन कार्यों को माता-पिता, अभिभावक या आचार्य

भी कर सकते हैं । स्वस्तिक लेखन के समय "ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्ध श्रवाः........." मंत्र बोला जाय ।

'ॐ' ईश्वर का प्रकृति प्रदत्त नाम है । नाद योग के अभ्यासी एक अनाहत नाद सुनते हैं, जिसमें काँसे के घड़ियाल में हलकी चोट लगने पर उत्पन्न होने वाली "ओं ओं ओं ओं........." जैसी ध्वनि सुनाई देती है । यह प्रकृति पुरुष का समागम कहलाता है । यह अनाहत 'ॐ' शब्द ही ईश्वर का स्वघोषित नाम है, इसी शब्द शक्ति से विश्व की सारी गतिविधियाँ संचालित हो रही हैं । अस्तु इस ईश्वरीय नाम को मस्तक पर लिख कर यह प्रयत्न किया जाता है कि बालक ईश्वर भक्त-आस्तिक बने । स्वस्तिक (卐) ॐ की ही प्राचीनतम लिपि है । जब अक्षर-विज्ञान परिष्कृत नहीं हुआ था तब "ॐ" को स्वस्तिक के रूप में लिखा जाता था । दोनों में अन्तर कुछ नहीं केवल लिखने के ढंग का अन्तर मात्र है । प्राचीनता की प्रतिष्ठा और उसका स्मरण रखने की दृष्टि से आमतौर से स्वस्तिक को प्रधानता दी जाती है । जहाँ जैसा लिखना उचित प्रतीत हो वहाँ स्वस्तिक या ॐ बच्चे के शिर पर केशर, कपूर मिश्रित चन्दन से अथवा रोली से लिख देना चाहिए ।

सर्वव्यापी न्यायाकारी परमात्मा को जो अपने भीतर और बाहर उपस्थित देखता है वह पाप नहीं कर सकता । सशस्त्र कोतवाल को सामने उपस्थित देखकर भला कौन चोरी करने का साहस करेगा ? ईश्वर विश्वासी को सर्वत्र उपस्थित परमात्मा पर जब सच्चा विश्वास हो जाता है तब वह गुप्त या प्रकट रूप से कोई पाप नहीं कर सकता है । पाप ही दुःखों के कारण हैं । जो पाप से बचा रहेगा, वह दुःखों से भी बचा रहेगा । आस्तिकता मनुष्य को पाप करने से रोकती है और कुकर्मों के फलस्वरूप मिलने वाले विविध विधि शोक सन्तापों से अनिष्ट संकटों से बचाती हैं । ईश्वर सत्कर्मों से प्रसन्न और दुष्कर्मों से अप्रसन्न होता है । वह अपने न्याय एवं व्यवस्था में

रत्ती भर भी अन्तर नहीं आने देता । इसलिए ईश्वर का अनुग्रह और उपहार प्राप्त करने के लिए हर व्यक्ति को सन्मार्ग पर चलना पड़ता है । यह मान्यता आस्तिकता से सरल अविच्छन्न रूप से जुड़ी है । इसलिए ईश्वर विश्वासी के मन से, सद्भाव और शरीर से सत्कर्म ही होते हैं । इस गतिविधि को अपनाने वाला आस्तिक अपने जीवन को सफल बनाता है और समाज में सुख-शान्ति की अभिवृद्धि करता है । जिसे अपने साथ सहचर के रूप में ईश्वर की उपस्थिति अनुभव होती है, वह इतना बड़ा हिमायती पाकर किसी से न तो डरता है और न किसी विषम घड़ी में विचलित होता है । आस्तिकता की भावनायें ईश्वर जैसे सर्वसमर्थ को अपना साथी सहचर अनुभव करने की हिम्मत बँधाती है, इस भावना से भावान्वित ईश्वर भक्त के लिए इस संसार में कोई भय नहीं रहता, उसे सर्वत्र प्रभु का मंगलमय सौन्दर्य ही दृष्टिगोचर होता है । भविष्य के उज्ज्वल होने की आशा उसकी आँखों में चमकती रहती है ।

आस्तिकता के अनेक लाभ हैं । उपासना और साधना का आश्रय लेकर कोई व्यक्ति परम प्रभु से अपनी घनिष्ठता स्थापित कर लेता है तो उसे उत्तराधिकार में वह सब कुछ मिल जाता है जो ईश्वर के पास है । उसकी विभूतियों का पारावार नहीं रहता । उत्कृष्ट दृष्टिकोण के कारण सर्वत्र उसे स्वर्ग दिखाई देता है और दुष्प्रवृत्तियों से छुटकारा पाने पर जीवन मुक्ति का आनन्द भी इसी जीवन में मिलता है । जो हर वस्तु में, हर व्यक्ति में, हर जीव में ईश्वर की उपस्थिति देखेगा, वह उनके साथ सद्व्यवहार करेगा । उसे ईश्वर दर्शन का आनन्द हर घड़ी मिलता रहेगा । परलोक में, स्वर्ग में, मुक्ति में जिन आनन्दों की कल्पना की गई है, वे सभी परिष्कृत दृष्टि वाले सच्चे आस्तिक को इसी जीवन में मिल जाते हैं । मुण्डन के उपरान्त मस्तक पर 'ॐ' लिखने का प्रयोजन बालक को अभिभावकों को तथा उपस्थित लोगों को सच्चे अर्थों में ईश्वर-भक्त आस्तिक बनने की प्रेरणा देना है ।

यह स्वस्तिक लेखन चंदन, केशर, कपूर के सम्मिश्रण से लिखा जाता है, जिसका तात्पर्य विचारधारा को शीतल, सुसंगठित एवं परिपुष्ट बनाना है । चन्दन शीतल, कपूर सुसंगठित एवं केशर को पुष्टि का प्रतीक मानते हैं । इनसे ईश्वर का नाम 'ॐ' लिखा गया । अर्थात् हमारी आस्तिकता ऐसी हो जो इन तीनों परिणामों के साथ सामने आये । कई व्यक्ति माला तो बहुत लम्बी फेरते हैं, पूजा अर्चा का विधान तो बड़ा विस्तृत बनाते हैं पर विचारों का स्तर निकृष्ट और कार्यों का तारतम्य घृणित बनाये रहते हैं । सोचते हैं थोड़ी-सी पूजा-पत्री की रिश्वत देकर कुकर्मों के दण्ड से छुटकारा पा लेंगे और मनमाने वरदान ले लेंगे । ऐसी अन्धड़ मान्यताओं से सच्ची आस्तिकता का कोई वास्ता नहीं, सच तो यह है कि ऐसा सोचना अध्यात्मतत्त्व ज्ञान के सर्वथा विपरीत है । हमारी आस्तिकता का लक्षण एवं स्वरूप क्या हो ? इसका स्पष्टीकरण चन्दन, केशर और कपूर मिले मिश्रण से 'ॐ' लिखने में भली प्रकार कर दिया गया है । हमारे विचार, शरीर, कार्य अपने को और दूसरों को शान्ति शीतलता प्रदान करें, सुगंधित यशस्वी हों, प्रगति एवं शक्ति की प्रेरणा देते हों, तो ही वे आस्तिकता, धार्मिकता से सम्पुटित माने जायेंगे । यों झूठ-मूठ के ईश्वर भक्त लाखों निठल्ले और कुकर्मी व्यक्ति आज भी नाना प्रकार के आडम्बर बनाये और प्रपंच रचे बैठे हैं । ऐसी आस्तिकता को नास्तिकता से भी गई-गुजरी कहा जाय तो अनुचित न होगा ।

उपरोक्त मुण्डन में विशेष क्रिया-कृत्य करने के साथ-साथ उनकी व्याख्या विवेचना भी करते चलना चाहिए । संस्कार पद्धति में इस संदर्भ में जो १२ श्लोक लिखे गये हैं, उनमें भी इसी विचारधारा का विवरण है । जहाँ उपयुक्त हो वहाँ इन श्लोकों का भी पुट अपनी व्याख्या विवेचना में देते चलना चाहिए ।

चूड़ा-कर्म और उसकी प्रेरणा-चूड़ा-कर्म (मुण्डन) संस्कार की प्रस्तावना में जो १२ श्लोक अभिनव संस्कार पद्धति में लिखे हैं,

उनका सारांश बहुत ही प्रेरणाप्रद है, उसकी विस्तारपूर्वक व्याख्या विवेचना की जानी चाहिए । चूड़ा-कर्म वस्तुतः मस्तिष्क की पूजा अभिवन्दना है । हर व्यक्ति को जानना चाहिए कि मस्तिष्क मानव शरीर में दिव्य चेतना के निवास का उसी प्रकार मर्मस्थल है, जिस प्रकार उच्च अफसरों के ठहरने को डाक बँगले होते हैं । शरीर रूपी देव-मंदिर में वह प्रतिमा प्रतिष्ठापना की एक दिव्य स्थली है । इसमें केवल शुभ संकल्प और उत्कृष्ट विचारों को ही निवास के लिए स्थान मिलना चाहिए । आग की चिनगारी कहीं थोड़ी देर के लिए भी ठहर जाती तो वहाँ सब कुछ भस्म करने का सत्यानाशी संकट उपस्थित कर देती है । इसी प्रकार मस्तिष्क में कुविचारों को यदि स्थान मिलने लगे तो जीवन प्रक्रिया को नष्ट-भ्रष्ट कर डालने की प्रक्रिया उपस्थित कर देते हैं ।

मस्तिष्क सार्वजनिक सम्पत्ति है । कुएँ, तालाब, सड़क आदि की तरह इसका लाभ व्यक्ति विशेष को नहीं वरन् समस्त समाज को मिलना चाहिए । शरीर की कमाई मजदूरी से शरीर का गुजारा होना चाहिए । मस्तिष्क को जो शिक्षा, प्रतिभा, बुद्धि एवं सूझ-बूझ मिली है, उसे ईश्वरीय विशेष अनुदान मानकर सार्वजनिक उपयोग में लगाना चाहिए । बुद्धि बल का लाभ समस्त समाज की प्रगति के लिए प्रयुक्त होना चाहिए । जिसके पास जितना अधिक बुद्धि बल, मनोबल हो वह उतना ही अधिक सार्वजनिक उपयोग करे तभी उसकी सार्थकता है । संसार के सच्चे बुद्धिमानों ने, महा पुरुषों ने किया भी यही है । अपनी मानसिक प्रतिभा का लाभ स्वयं ही नहीं उठाया वरन् उसे लोकमंगल में ही लगाये रखकर इस ईश्वरीय विशेष अनुदान का प्रयोजन पूर्ण किया है ।

मस्तिष्क की श्रेष्ठता इस बात में नहीं, कि वह अधिक भौतिक सफलतायें प्राप्त करके-अधिक समृद्धिवान बन जाय और अधिक ऐश्वर्य का उपयोग करे । वरन् उसकी सार्थकता इस बात में है कि

अपने गुण, कर्म, स्वभाव का परिष्कार कर उत्कृष्ट स्तर का व्यक्तित्व विकसित करे । सादगी, नम्रता, प्रसन्नता, पवित्रता, सन्तोष, उदारता आदि सद्गुणों की पूँजी जो जितनी अधिक कमा सके उस मस्तिष्क को उतना ही अधिक सफल और सार्थक माना जायगा । साहसी, संतुलित, गम्भीर, धैर्यवान, निडर मनोवृत्ति का उपार्जन जो कर सके, वस्तुतः उसे ही सच्चा ज्ञानी कहा जायगा ।

कुशाग्र बुद्धि, परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के लिए अधिक नम्बर लाने वालों को ही नहीं कहना चाहिए । सच्चे बुद्धिमान वे हैं जो विवेकशीलता के धनी हैं । उचित–अनुचित का नीर–क्षीर विवेक कर सकते हैं । अनुचित को त्यागने और उचित को अपनाने के लिए बड़े से बड़े भय एवं प्रलोभन की परवा नहीं करते । जो किसी भी कारण अनुचित को अंगीकार और उचित को परित्याग नहीं करते–जो आज के छोटे से प्रलोभन के लिए भविष्य को अन्धकारमय नहीं बनाते, वस्तुतः उन्हें ही बुद्धिमान कहा जाना चाहिए । जो निन्दनीय कुमार्ग से बचे रहने और सन्मार्ग पर चल सकने का मनोबल एकत्र कर सका उसी की बुद्धि कुशाग्र एवं प्रशंसनीय कही जायगी ।

मस्तिष्क एक प्रकार का विद्युत प्रवाह यंत्र–ट्रांसमीटर है । इसमें जो विचार उठते हैं, वे स्वयंमेव ईश्वर तत्व की सहायता से विस्तृत होकर समस्त संसार में भ्रमण करने लगते हैं और दूसरों के मस्तिष्कों से टकराकर उन्हें सन्मार्ग या कुमार्ग पर चलने के लिए प्रेरणा देते हैं । हमारे मस्तिष्क में यदि कुविचार उत्पन्न होंगे तो वे वायु मण्डल में अपनी तरंगें बहाते हुए अन्य असंख्य मस्तिष्कों को वैसी ही स्फुरणा देंगे और वैसी ही प्रवृत्ति उत्पन्न करेंगे । यही बात सद्विचारों के सम्बन्ध में भी है । इसीलिए शुभ विचारों की धारणा करने वाला व्यक्ति परोपकार या पुण्य लाभ करता है और दुर्भाव मन में भरे रहने वाला प्रत्यक्ष पाप न करते हुए असंख्य मनुष्यों को कुमार्ग की प्रेरणा देने का निमित्त बनने के कारण पापी बनता रहता

है और कुविचार करने जैसा ही ईश्वरीय दण्ड एवं कोप का भागी बनता है । अतएव मस्तिष्क का श्रेष्ठतम सदुपयोग करना ही बुद्धिमत्ता है । ऐसी बुद्धिमत्ता चूड़ा-कर्म करने वाले बालक में उत्पन्न हो इसका प्रयास करना सभी उपस्थित लोगों का, परिवार तथा समाज का कर्तव्य है । सुनने वालों तथा दूसरों को भी अपने तथा अपने सम्बन्धियों के मस्तिष्कों का सार्थक सदुपयोग हो सके ऐसा प्रयत्न करना चाहिए । चूड़ा-कर्म की यही वास्तविक प्रेरणा है ।

व्याख्या विवेचन के उपरान्त अग्नि स्थापन से लेकर विसर्जन, सूर्यार्घ्यदान तक सारे क्रिया-कृत्य गायत्री हवन-विधि के अनुसार किये जायें । उपस्थित लोग अक्षत पुष्पों की वर्षा बालक पर करते हुए आशीर्वाद मंत्र "ॐ श्रीवर्चस्व......." बोलें । माता की गोदी में मंगल फल "ॐ विष्णों र्नु........." मंत्र से देते हुए विदा करें । मंगल फल देने वालों को मंत्र न आता हो, तो "ॐ स्वस्ति न इन्द्रो........." मंत्र भी बोला जा सकता है ।

⦿

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा

: युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य- संक्षिप्त परिचय :

ज्यादा जानकारी यहाँ से प्राप्त करें :
http://hindi.awgp.org/about_us

- **विचारक्रान्ति अभियान के प्रणेता** : विचारों को परिस्कृत और ऊँचा उथाने मे समर्थ 3000 से भी अधिक पुस्तकों के लेखन के माध्यम से विश्वव्यापी विचार क्रान्ति अभियान की शरुआत की ।
- **वेद, पुराण, उपनिषद के प्रसिद्ध भाष्यकार** : जिन्हों ने चारों वेद, 108 उपनिषद, षड दर्शन, 20 स्मृतियाँ एवं 18 पुराणों का युगानुकूल भाष्य किया, साथ ही 19 वाँ प्रज्ञा पुराण की रचना भी की ।
- **3000 से अधिक पुस्तकों के लेखक** : मनुष्य को देवता समान, घर-परिवार को स्वर्ग, समाज को सभ्य और समग्र विश्वराष्ट्र को श्रेष्ठ बनाने मे समर्थ हजारों पुस्तकें लिखकर समयानुकूल समर्थ मार्गदर्शन प्रदान किया ।
- **युग-निर्माण योजना के सूत्रधार** : जिन्होंने शतसूत्री युग निर्माण योजना बनाकर नये युग की आधार शिला रखी ।
- **वैज्ञानिक-अध्यात्मवाद के प्रणेता** : जिन्हों ने धर्म और विज्ञान के समन्वय की प्रथम प्रयोगशाला 'ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान' स्थापित कर सिद्ध किया कि "धर्म और विज्ञान विरोधी नहीं, पुरक है "।
- **'२१ वीं सदी : उज्जवल भविष्य' के उद्घोषक** : जिन्हों ने '२१ वीं सदी : उज्जवल भविष्य' का नारा दिया तथा युग विभीषिकाओं से भयग्रस्त मनुष्यता को नये युग के आगमन का संदेश दिया ।
- **स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ सैनानी** : जिन्हों ने महात्मा गाँधी, मदन मोहन मालवीय, गुरुवर रविन्द्रनाथ टैगोर के साथ राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया एवं स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी "श्रीराम मत्त" के रुप में प्रख्यात हुए ।
- **गायत्री के सिद्ध साधक** : जिन्हों ने गायत्री और यज्ञ को रुढियों और पाखण्ड से मुक्त कर जन-जन की उपासना का आधार तथा सद्‌बुद्धि एवं सतकर्म जागरण का माध्यम बनाया ।
- **तपस्वी** : जिन्होंने गायत्री की कठोरतम साधना कर २४-२४ लाख के २४ महापुरश्चरण २४ वर्षो में सम्पन्न किया । प्रकृति प्रकोप को शांत कर अनिष्टों को टाला, सृजन सम्भावनाओं को साकार किया ।
- **अखिल विश्व गायत्री परिवार के जनक** : जिन्हों ने अपने जीवनकाल में ही अपने साथ करोडों लोगों को आत्मियता के सूत्र में बाँधकर विश्व व्यापी 'युग निर्माण परिवार' - 'गायत्री परिवार' का गठन किया ।
- **समाज सुधारक** : जिन्हों ने नारी जागरण, व्यसन मुक्ति, आदर्श विवाह, जाति-पाँति प्रथा तथा परंपरागत रुढियों की समाप्ति हेतु अद्‌भूत प्रयास किए एवं एक आदर्श स्वरुप समाज में प्रस्तुत किया ।
- **ऋषि परम्परा के उद्धारक** : जिन्हों ने इस युग में महान ऋषियों की महान परंपराओं की पुनर्स्थापना की । लुप्तप्राय संस्कार परंपरा को पुनर्जीवित कर जन-जन को अवगत कराया ।
- **अवतारी चेतना** : जिन्होंने "धरती पर स्वर्ग के अवतरण और मनुष्य में देवत्व के जागरण" की अवतारी घोषणा को अपना जीवन लक्ष्य बनाया और चेतना का ऐसा प्रवाह चलाया कि करोंडों व्यक्ति उस ओर चल पड़े ।

गायत्री परिवार जीवन जीने कि कला के, संस्कृति के आदर्श सिद्धांतों के आधार पर परिवार,समाज,राष्ट्र युग निर्माण करने वाले व्यक्तियों का संघ है। **वसुधैवकुटुम्बकम्** की मान्यता के आदर्श का अनुकरण करते हुये हमारी प्राचीन ऋषि परम्परा का विस्तार करने वाला समूह है गायत्री परिवार। एक संत, सुधारक, लेखक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और दूरदर्शी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य जी द्वारा स्थापित यह मिशन युग के परिवर्तन के लिए एक जन आंदोलन के रूप में उभरा है।